डॉ0 सुभाषचन्द्र यादव (क्षेत्रीय पुरातत्व अधिकारी, बनारस क्षेत्र)

प्र0 भारतीय मन्दिरों के कौन–कौन से शैली हैं तथा संगीत कला की दृष्टि से कौन सी शैली ज्यादा विकसित हुई?

उ0 भारत में मन्दिरों की प्रसिद्ध रूप से तीन शास्त्रीय शैली हैं, जिसमें–नागर शैली, बेसर शैलो और द्रविड़ शैली है। उत्तर भारत में नागर शैली के मन्दिर प्राप्त होते हैं, दक्षिण क्षेत्र में द्रविड़ शैली।

प्र0 कई प्राचीन दक्षिण भारतीय मन्दिरों में (करण) नृत्य की शास्त्रीय मुद्रा अंकत हैं, क्या यह मन्दिर की आधुनिक वास्तु परम्परा को प्रचलित करता है?

उ0 यह अभो भी शोध विषय बना हुआ है, वास्तव में मन्दिरों में करण का अंकन कब और क्यों हुआ? दक्षिण के जो कुछ मुख्य चिदम्बरम्, नटराज सारंगपाणी मन्दिर हैं, जिसमें नाट्यशास्त्र के करण को उसकी संख्या के साथ अंकन किया गया है। शिव कलाओं के अधिष्ठाता हैं और शिव पूजा के साथ मन्दिर का विकास होने लगा, जो मन्दिर वास्तव में इन शिव मूर्तियों के चित्रों का अंकन स्वाभाविक तौर पर होने लगा। उत्तर भारत में मन्दिर बनना शुरू हुआ और दक्षिण में इसका विस्तार स्वरूप देखने को मिला। दक्षिण भारत में मन्दिर का विस्तृत स्वरूप उभर कर आता है जो उत्तर भारत में इसके स्वरूप में कम देखने को मिलता है। द्रविड़ शैली की विशेषता है कि बड़ी चार दिवारी से आरम्भ फिर मूल मन्दिर में से बड़ा मन्दिर का गोपुरम में समस्त कलाओं के अंकन का प्रमुख स्थान होता है। कालान्तर में कला विकसित होते हुए चोलकाल के तंजौर का बृहद्देश्वर मन्दिर, दण्डईचोलपुरम् यह दोनों मन्दिर

भारत में मन्दिर स्थापत्य कला की परिकाष्ठा है, जहाँ पूर्ण शास्त्रीय विधि–विधान के साथ पूर्ण गौरव के साथ मन्दिर को शास्त्रों के साथ अंकित किया। चोलकाल के अन्तिम समयकाल में मन्दिर का महत्व भी बढ़ने लगा, दक्षिण भारत मन्दिर में मूल मण्डप के अतिरिक्त नटमण्डप, कल्याणमण्डप, चिकित्सा के लिए भी मण्डप का निर्माण होने लगा, व्याकरण मण्डप भी हुआ करता था। यानि मनिदर में धार्मिक, सामाजिक, चिकित्सिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने लगभ। इसी मन्दिर में मूल स्वरूप के साथ ही उसका निर्माण भी किया गया। ताकि यह भी मन्दिर के अन्दर का ही भाग बना रहे।

धर्म का केन्द्र मन्दिर के अन्दर अर्ध व्यवस्था भी अच्छी थी। चढ़ावे के तौर पर भी मन्दिर विकसित होता गया धर्मशाला, कल्याण मण्डप में शादी का केन्द्र भी बना, तो मन्दिर की महत्वता भी बढ़ी और वहाँ आनन्द होना स्वाभाविक था क्योंकि वहाँ भजन–कीर्तन, देव पूजा में आरती, नृत्य संगीत का होना और भी आनन्द प्रदान करता था। व्याकरण मण्डप में साहित्य की रचनाओं पर ध्यान दिया गया। शास्त्रों के भाषाओं पर कार्य किया गया। कारण यह कि मन्दिर की अध केन्द्र के तरफ काम कर रहा था और वहाँ मन्दिरों में मूर्तियों में करण को अंकित करने का मुख्य कारण यह भी था कि मनुष्य देखने से बहुत जल्दी सीखता है, मन्दिरों में जो भी व्यक्ति आए वह इसके दीवारों पर अंकित शास्त्रीय नृत्य को मूर्तिकला के माध्यम से देखें और सीखे। मन्दिर में आए सभी व्यक्ति इसे देख शिक्षा ले सकता था और यह कलाएँ प्रदर्शनी से अधिक ट्रेनिंग सेंटर के रूप में प्रचलित हुई।

प्र0 मन्दिरों में अंकित करण देवदासियों से सम्बन्धित है या करणों से?

उ0 नाट्यशास्त्र के समय गुरुजनों के मध्य यह नृत्य देवदासियाँ भी किया करती होंगी। देवदासी प्रथा का प्रारम्भ यहीं से होता है। कोई भी अवस्था से ईश्वर को अपने आपको समर्पित किया जाना वहाँ के मूर्ति की पूजा–पाठ, भजन–कीर्तन, देवमूर्ति की आराधना, अभीष्ट को प्रसन्न करने के लिए नृत्य एक अच्छा माध्यम रहा है और यह देवदासी की नृत्य को आगे ले गई और इनका बहत बड़ा योगदान प्राप्त होता है, जो अपने गुरुओं से नृत्य सीखने–सीखाने का कार्य करती थीं। इस नृत्य विधा में नर्तकों का भी प्रमाण प्राप्त होता है, जो मन्दिर में नियुक्त किए जाते थे। इसका प्रमाण स्थापित है। देवदासिया नृत्य को लोक में प्रचारित–प्रसारित करने में मुख्य भूमिका निभाती थी। मन्दिर में साधना के साथ नृत्य का इतना महत्व था जिसमें देवदासी नृत्य का महत्वपूर्ण अंग थीं। मन्दिरों में करण के अंकन में देवदासियों तथा शास्त्र दोनों का महत्व एवं एक–दूसरे के visa-versa अनायास

....

श्री प्रेम होम्बल (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, सेवानिवृत्त प्रोफेसर, नृत्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

प्र0 नाट्यशास्त्र के परवर्ती ग्रन्थकारों ने करण के विषय पर क्या कहा है?

उ0 नाट्यशास्त्र के परवर्ती ग्रन्थकारों में करण के विषय पर श्री प्रेमचन्द होम्बल जी बताते हैं कि करण नाट्यशास्त्र तक सीमित नहीं हैं किसी भी क्रिया के मूल कारण को कहा जाता है। नाट्य, नृत्त, और नृत्य सभी में हमारा शरीर

माध्यम है और शरीर द्वारा क्रिया की जाती है जिसे ''करणा'' बताया जाता है। आचार्य भरत करण के सूत्र को बताते हुए कहा है कि ''हस्त पाद समायोग नृत्स्यम् करणं भवेति'', हाथ पैर के योग से करण बनता है। इस सूत्र की व्याख्या को समझने के लिए अभिनवगुप्त के द्वारा 1200 हजार वर्ष बाद उनके द्वारा टीका अभिनय भारती को समझना आवश्यक है। अभिनय भारती टीका में ''क्रियाहिकरणं'' कहा गया है अर्थात् क्रिया ही करण है, फिर ''तस्यक्रिया'' कैसी क्रिया, ''नृत्यस्य क्रिया'' नृत्य की क्रिया, ''गास्यविलास्पक्षेपम्'' शरीर का विलासपूर्ण संचालन, ऐसा संचालन जिसमें सौन्दर्य हो।

भरतनाट्यम् की मूल इकाई अडबु में निहित और जितने भी अडबु है वह सभी करण है क्योंकि उन अडबुओं का सम्मिलित रूप जति तीर्मानम् में देखते हैं। कोरवे में नृत्त हस्त का उपयोग, यह सभी इसके मूल कारक हैं। भरतमुनि के लिखित नाट्यशास्त्र में 108 करण ही नहीं है। आचार्य भरत चौथ अध्याय में स्पष्ट कहते हैं कि करण हजारों हैं, किन्तु मैंने कुछ 108 करणों को यहाँ सम्मिलित किया है।

प्र0 करणों में अभिनय का प्रयोग होता है?

उ0 भरत मुनि के अनुसार करण में अभिनय नहीं होता एवं ''नृत्तःकरण'' कहा गया है और नृत्य की परिभाषा ही पाद सचालन है। अभिनवगुप्त के अनुसार ''गातस्यविलासक्षेपं'' शरीर का विलासपूर्ण, आनन्दपूर्वक, सौन्दर्यपूर्वक संचालन ही नृत्य है, परन्तु कुछ करणों के लिए कहा गया है कि कुछ भाव की अभिव्यक्ति की जा सकती है। एक करण किसी विशेष प्रकार की भावअभिव्यक्ति प्रस्तुत की जा सकती है। उदाहरण–लक्ष्ु महाराज जी कथक

नृत्य के और उनकी विशेषता कुछ रचनाओं में कुछ टुकड़ों को वह नृत्य में प्रस्तुत करते और फिर उसी टुकड़े को नृत्य में भाव अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत किया करते। वह उनकी सुन्दर कल्पनाओं में से एक थी।

प्र0 भारतीय नृत्य परम्परा मं देशी करण का प्रयोग कितना देखने को मिलता है? क्या इसका वर्तमान शास्त्रीय नृत्य से कोई सम्बन्ध है?

उ0 देशी करण की चर्चा संगीत रत्नाकर में मिलती है। 12 से 13वीं शताब्दी में देशी करण का प्रचलन आ गया था। आज हम जिन्हें शास्त्रीय नृत्य कहते हैं वह मूलतः मार्गी उसमें पृष्ठ दिखाई देती है क्योंकि हमेशा लोक से ही सभी नृत्य शैलियाँ ली गयी हैं। तो जो शास्त्रीय नृत्य दिखता है वह लोक से मार्गी में आया और जिसका प्रयोग सभी सरलापूर्वक कर सकते थे वह लोक में किया जाता है।

प्र0 वर्तमान भरतनाट्यम् नृत्य में निहित भरत मुनि द्वारा दिए गए करणों को आप किस प्रकार से देखते है?

उ0 नाट्यशास्त्र में करण जिस तरीके से वर्णित है वैसा भरतनाट्यम् में प्रयुक्त नहीं होते। अगर अनायास किसी करण का प्रयोग होता भी है तो पूर्ण रूप से वौसा नही होता जैसे भरतमुनि ने बताया। वर्तमान मे किए जा रहे प्रयोगों में अगर करण का प्रयोग पर भरतनाट्यम् नृत्य किया जाए तो वह नवीन रचना होगी, परन्तु पारम्परिक नृत्य जो शुद्ध भरतनाट्यम् का रहा है उसमें आचार्य भरतमुनि निहित करणों का प्रयोग नहीं किया गया है।

प्र0 कन्टेम्परेरी समय में भरतनाट्यम् में बहुत ही चीजों के साथ प्रयोग किया जा रहा है, आपके विचार में यह उचित है?

उ0 न्यू भरतनाट्यम् नृत्य शैली प्रचार में तो है परन्तु नृत्य में सौर्न्दबोध की पुष्टि आवश्यक है। जिस नृत्य को देखकर आनन्द की अनुभूति हो क्योंकि यह अनुभूति सदैव रहने वाली है। जैसे नृत्यकृत प्रतिमा को देखें तो भाव की अनुभूति होती है उस प्रतिमा की आंगिक, सौन्दर्यता को हम भावपूर्ण सम्बन्धित करें तो रस की अनुभूति होती है। निष्प्राण मूर्तियां अगर रसानुभूति करा रही है तो नृत्य कोई भी हो तो उसमें आनन्द की अनुभूति होनी ही चाहिए।

प्र0 मन्दिरों के वास्तु में करण को उत्कीर्ण करने की क्या अवधारणा रही होगी?

उ0 प्रत्येक मन्दिर में अनेक प्रकार के शिल्पों के अंकन से किया गया है। शास्त्रों में इसे प्रतिमा कहा गया है। मन्दिरों में जितनी भी साज, सज्जा, प्रतिमाएँ आकृतियाँ, उत्कीर्ण हैं वह बारी दीवारां पर है। गर्भगृह के अन्दर प्रवेश करने में कुछ भी नहीं मिलता, जिसका सीधा तात्पर्य है कि सांसारिक क्रियाकलापों को जब हम मन्दिर में प्रवेश करे तो हमारा शुद्ध शांत होना चाहिए, मन को पवित्र रखकर उस ईष्ट की प्रार्थना की जानी चाहिए। इसलिए मन्दिर के अन्दर कोई भी प्रतिमा या शिल्पों को नहीं गढ़ा गया है। जो भी नृत्य, नृत्त, कामरस मूर्तियों की आकृति है वह बाहरी दीवारों पर ही है। मन्दिरों पर मूर्तियाँ बनाने का मुख्य कारण यही था कि ईश्वर की आराधना को समझाने के लिए लोक दर्शकों यह बताना जरूरी है कि मोहमाया सभी को त्यागते हुए ईश्वर के पास भक्तिभाव से समर्पित होना ही आराधना है।

डॉ0 ज्योति सिंह, टैगौर राष्ट्रीय अध्येता, इन्दिरा गांधी कला केन्द्र, वाराणसी

प्र0 नाट्यशास्त्र में परवर्ती ग्रन्थकारों में करण के विषय में क्या अवधारणा दी हैं?

उ0 नाट्यशास्त्र में आप में सम्पूर्ण ग्रन्थ है, परन्तु इसके बाद के ग्रन्थों में जैसे–भावप्रकाशन बहुत ही प्रकीर्णक रूप से 12वीं शताब्दी में लिखा गया है। नृत्य म कुछ ऐसे ग्रन्थ लिखे गए हैं, जिसमें मात्र नृत्य के ऊपर एक अध्याय अंकित है। 13वीं शताब्दी में संगीतरत्नाकर प्राप्त हुआ और इसके सातवें अध्याय में नृत्य की चर्चा पायी गई। इसे भरतमुनि की सामग्री का अनुसरण करते हुए कुछ अपनी बातों को जोड़ा गया है। संगीतरत्नाकर को नाट्यशास्त्र के बाद अधिक कृष्ट माना गया क्योंकि यह बृहद्देशी आया और इसमें नृत्य की चर्चा बड़ी मात्रा में की गयी है तथा इसे बहुत क्रम में लिखा गया है, सबसे पहले स्वरगताध्याय, रागाध्याय, प्रबन्धातालबद्ध, वाद्याध्याय और क्रम से अन्त में नृत्य अध्याय है। यानि कि राग, ताल, स्वर वाद्य के बाद नृत्य को समझना सम्भव एवं सरल हो जाता है। इसमें 108 करण की भी चर्चा की गयी हैं, परन्तु कुछ संख्याक्रम में अन्तर पायी गयी है।

16वीं शताब्दी में नर्तन निर्णय ग्रन्थ की प्राप्ति होती है। यह अपने दो नृत्य अध्यायों के वजह से खास मानी जाती है। इसके पीछे धारणा यह है कि पहले नतनाधिकरणम् फिर दूसरा अध्याय नृत्ताधिकरणम्। नृत्तादि में भाव रस

की चर्चा की गई है परन्तु नृत्यादि करण में आंगिक करण की चर्चा की गई है। इसके पश्चात् करण की भी चर्चा प्राप्त होती है। यानि कि क्रम से अध्याय को रचा गया है। परन्तु इसमें स्पष्ट लिखा गया है कि केवल वर्तमान में नृत्य प्रयुक्त होने वाले करण की चर्चा की गई है।

यानि कि 16वीं शताब्दी तक आते–आते बहुत से करण प्रचलन में नहीं थे और जो थे वह संगीतरत्नाकर में प्राप्त होते हैं। उस क्षेत्र में प्रयुक्त करण और नाट्यशास्त्र के करण में अन्तर आ गया। केवल 16 करण की ही बात इस ग्रन्थ में सम्बोधित की गयी है, जिसमें से 12 से 13 करण नाट्यशास्त्र से मिलत है और दो–तीन नए प्रयोग हुए हैं। 17वीं शताब्दी में संगीतनारायण ग्रन्थ आया। यह उड़ीसा के राजा राज्य–दरबार का लिखित ग्रन्थ है। इसमें करण की चर्चा में संगीतरत्नाकर का अनुसरण किया गया है, परन्तु 108 करणों का पुनः नाम इसमें प्राप्त होता है। उनका कहना है कि सभी नृत्यों में यह करण प्राप्त है। 108 करणों के नाम से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पुनः यह सभी प्रचलन में आये होंगे। इन सभी ग्रन्थों में करण, रस और भाव क्रम से दृष्टिगोचर होती है। नाट्यशास्त्र में रस भाव की चर्चा करण में नहीं प्राप्त होती, परन्तु संगीतरत्नाकर में अतृप्त रस जो कभी भंग नहीं होना चाहिए एवं यही बात नर्तननिर्णय, संगीतनारायण में भी बताई गयी है।

प्र0 भारती ग्रन्थ परम्परा में देशी ग्रन्थ का प्रयोग किस काल से दिखता है? क्या इसका वर्तमान शास्त्रीय नृत्य से कोई सम्बन्ध रहा है?

उ0 देशी की अवधारणा लगभग 6 शताब्दी के बाद हुई क्योंकि नाट्यशास्त्र के पहले गन्धर्वशास्त्र/मार्ग हुआ करता था। विकासक्रम में देशी करण का प्रयोग बृद्देश्वर में प्राप्त होता है। शारंगदेवकृत संगीतरत्नाकर में भी देशी करण प्राप्त होते हैं। संगीतनारायण में 36 देशी करण बताए गए हैं जिसमें उत्प्लवन, भमरी करने की प्रतिक्रिया बताई गई है। जो वर्तमान के नृत्य में देखने को मिलती है। हस्त पद के समायोग को देशी करण और हस्तपाद आदि समायोजन को शास्त्रीकरण बताया गया है।

प्र0 मन्दिरों के वास्तु में करण को उत्कीर्ण करने के पीछे क्या उद्देश्य रहा होगा?

उ0 करण को संक्षिप्त करने के लिए मन्दिर में बनाया गया है। मन्दिर एक ऐसा पवित्र स्थान रहा जहाँ सभी किसी अवसर विशेष आयोजन पर एकत्रित होते हैं। एक राजा जब इस तरह की निवृत्ति करता है, तो सम्वृद्धि का प्रतीत देता है, जो हमारे राज्यकुल की संवृद्धि का प्रतीत देता है आर अपने ईश्वर के प्रति समर्पण भी दर्शाता है। ''हरः प्रिय'' जो शिव को प्रिय है और शिव को करण तथा इस प्रकार का नृत्य प्रिय माना गया है।

श्री शिवा पिल्लै पु0 स्व0 सतीश पिल्लै, तंजौर बानी, बड़ोदरा, भरतनाट्यम् कलाकार एवं प्रसिद्ध मृदंग वादक

प्र0 वर्तमान समय में नाट्यशास्त्र के प्रयोग से भरतनाट्यम का स्वरूप और खूबसूरत बन सकता है?

उ0 भरतनाट्यम् में नाट्यशास्त्र का प्रयोग सदियों से होता आ रहा है। मन्दिरों में बने नृत्य मूर्तियों में जिन करणों का वर्णन प्राप्त होता है। उसे भी

भरतनाट्यम् में प्रयोग किया जा सकता है। जैस–शिव के नटराज स्वरूप को दिखाया जाता है उसे करण की भाषा में भुजंगत्रासित के नाम से जाना जाता है। नृत्य के सभी पुराने अंग हैं जो नाट्यशास्त्र में लिखित हैं उन्हीं तत्वों को वापस से भरतनाट्यम् में किया जा रहा है। आज के बदलाव के माध्यम से हम नाट्यशास्त्र और गहराई से अध्ययन करने का प्रयास कर रहे हैं।

प्र0 वर्तमान समय में कलाकारों द्वारा भरतनाट्यम् में अलग–अलग प्रयोग किए जा रहे हैं। उससे आपका क्या तात्पर्य है?

उ0 भरतनाट्यम् स्वयं सुन्दर विधा है परन्तु प्रयोग को सुन्दर तरीके से किया जाए तो अवश्य यह नृत्य को और प्रभावशाली बनाएगा। स्थानक, चारी, रेचक, नृत्य हस्त का प्रयोग अलग–अलग तरीके से किया जाता रहा है। परन्तु आज के समय में इसके बदलते हुए प्रयोग दिखाई दे रहे हैं, जो मेरे माध्यम से अच्छे हैं क्योंकि जो भी गुणीजन इसे प्रयोग कर रहे हैं, वह अध्ययन कर इसके तत्वों को और स्पष्ट कर पा रहे हैं। नृत्य के तत्वों को प्रयोग करना और उसे भरतनाट्यम् में सम्मिलित करना भी एक साधना है। जैसे–सर्प हस्त का प्रयोग भरतनाट्यम् में होता है, परन्तु करणा के शारीरिक अंग संचालन के साथ इस हस्त का प्रयोग और स्पष्ट प्रदान करता है। नत्य के विषय में करण को विस्तारपूर्वक बताया गया है। प्राचीनकाल में नृत्य के बीच के सोलु को भरने के लिए इन करणों का प्रयोग किया जाता था, जैसे किसी जति के बीच में सोलु आता तो उस खाली स्थान को करणों के प्रयोग से भरा जाता था।

प्र0 क्या यह अनुमान लगाया जा सकता है कि देवदासियाँ भी अपने नृत्य में करण का प्रयोग किया करती थीं?

उ0 देवदासी द्वारा करणों का प्रयोग किया ही जाता था, कुछ मन्दिरों का निर्माण देवदासियों से पहले ही हुए हैं, जिसमें नृत्य करण मूर्तियाँ प्राप्त हैं और इन्हीं मूर्तियों को बेचकर देवदासियों ने यह अंग भंगिमाओं को नृत्य में प्रस्तुत किया। आज के समय में नृत्य शिक्षा सरल हो गयी है। हमारे पास पुस्तक हैं, विश्वविद्यालय हैं, यू–ट्यूब चैनल्स हैं, परन्तु पहले की शिक्षा मुखज हुआ करती थीं। गुरु द्वारा बताए गए बातों को नृत्य में प्रस्तुत किया जाता था। वहीं मन्दिरों पर गढ़ी मूर्तियाँ भी शिक्षा का एक अनोखा साधन समान थी।

प्र0 आज के समय में नृत्य में जो बदलाव आ रहे हैं, क्या वह पुराने समय में भी हुआ करता था। पुराने गुरुजन कैसे इसे स्वीकार किया करते थे?

उ0 गुरुजन कभी किसी बदलाव को बहुत जल्दी स्वोकार नहीं किया करते थे, पर कुछ समय के बाद सभी तत्वों को देखकर वह यह भी स्वीकारते थे कि इसका प्रयोग अलग प्रकार से भी किया जा सकता है, परन्तु नृत्य की सौन्दर्यता बनी रहनी चाहिए।

प्र0 वर्तमान समय में भरतनाट्यम् में होने वाले करण के प्रयोग को देखते हुए आप क्या कहना चाहेंगे?

उ0 परिवर्तन अगर शास्त्रों के अनुसार हो तो वह जीवन्त रहेगा और नई पीढ़ी उसे कितना महत्व देती है, इस पर भी आधारित होता है। समय–समय पर बदलाव होना ही चाहिए, परन्तु किसी विधा को परिवर्तन स्वरूप देने में भी कुछ मर्यादाओं का पालन करते हुए उसे किया जाए तो वह लम्बे समय तक टिका रह सकता है।

डॉ0 विद्या अरसु, पौण्डीचेरी (शिष्या–डॉ0 पद्मा सुब्रह्मण्यम), भरतनाट्यम् एवं ओडिसी नृत्यांगना

प्र0 नाट्यशास्त्र के तत्वों का प्रयोग जैसे त्रिभंग, हस्तकरण, करण इत्यादि का प्रयोग भरतनाट्यम् में नहीं होते। अगर इसका प्रयोग किया जाए तो भरतनाट्यम् के नाम को बदल देना उचित होगा।

उ0 डॉ0 पद्मा सुब्रह्मण्यम जी पहले ही इसको भरतनृत्यम् का नाम दे चुकी हैं। परन्तु वर्तमान समय में देखा जाए तो ऐसे कई सारे नृत्य, नाट्य हैं जिसमें नाट्यशास्त्र के तत्वों का प्रयोग किया जा रहा है। नाट्यशास्त्र के तत्वों को एक माध्यम की तरह इस्तेमाल कर नृत्य शैली के अन्दर जोड़ने का प्रयास किया जाता है। अगर सभी नृत्य शैलियों में नाट्यशास्त्र का प्रयोग कर इसके नाम को बदला जाए तो इससे बहुत ज्यादा उलझन हो सकती है, तो ऐसी गड़बड़ी ना हो तो इसके नाम को बदलने की आवश्यकता नहीं है।

प्र0 आपने भी करण सीखा है और उपयोग में भी करती हैं। आपके अनुसार भरतनाट्यम् में इसका प्रयोग करने से इस नृत्य शैली के स्वरूप बिगड़ जायेगा?

उ0 नहीं, यह शास्त्रीय शैली को नष्ट नहीं करता, बल्कि और स्थिरता के साथ नृत्य को खूबरसूरत बनाने में मदद करता है।

प्र0 मन्दिर में करण शिल्प मूर्तियों को देखकर, उस समय के साहित्य को पढ़कर यह लगता है कि देवदासियों के समय करण

का प्रचार होगा। आपके अनुसार क्या देवदासियों के नृत्य में करण किया जाता होगा?

उ0 हाँ, डॉ0 पद्मा सुब्रह्मण्यम् जी द्वारा दक्षिण भारत में 14वीं शताब्दी तक और उत्तर भारत में 12वीं शताब्दी तक नृत्यकारों ने नाट्यशास्त्र के तत्वों को अपनाया करते थे। उसके बाद नृत्य में कई सारे बदलाव भी देखने को मिलने लगे।

प्र0 नई पीढ़ी फिर से नाट्यशास्त्र के तत्वों को प्रयोग में ला रही है, आने वाली पीढ़ी को आप क्या संदेश देना चाहेंगी? और आपकी क्या अपेक्षाएँ हैं?

उ0 बिल्कुल नाट्यशास्त्र को सही तरीके से अध्ययन कर इसके तत्वों को अपनाना चाहिए, इस विषय पर गहन शोध कर इसके गहराईयों को समझते हुए प्रयोग करना चाहिए। इसके तकनीक को नृत्य मे प्रयोग किया जाए तो नृत्य को एक नया आयाम दिया जा सकता है, जिससे यह और प्रभावशाली और आकर्षित दिखता है।

डॉ0 पद्माजी भी यही चाहती है। उन्होंने अपना पूरा जीवन इस नृत्य को समर्पित किया है और हम नई पीढ़ी उन्हें उनके काम के लिए उपहार स्वरूप अगर कुछ समर्पित कर सकते हैं तो वह यही होगा कि नृत्य में नवीनता लाने के लिए नाट्यशास्त्र का गहन अध्ययन कर सही तकनीकों के साथ करण का प्रयोग किया जाए और प्रचार–प्रसार किया जाए।

डा0 रंजना उपाध्या (सहायक आचार्या, नृत्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

प्र0 आधुनिक नृत्य परम्परा को और आधुनिक शास्त्रीय आधार प्रदान करने में आपकी क्या विचारधारा रहेगी?

उ0 नृत्य कलाओं का आधार तो शास्त्रों से ही है। वे पुराण से नृत्य संगीत जुड़ा हुआ है। उदाहरण—हरिवंश पुराण में हल्लीसक, छालिक्य राग से सम्बन्धित, मण्डलाकार नृत्य की संकल्पना प्राप्त होती है, जिससे सामूहिक नृत्य भी कहा जा सकता है, पुराणों में रास, रासक के प्रकार को नाट्यशास्त्र में उल्लेखित किया गया है। इसका प्रमाण प्राप्त होता है। वर्तमान समय में होने वाले नृत्य प्रयोगों में नाट्यशास्त्र के 80 प्रतिशत तत्वों को लिया जा रहा है। परन्तु हमारा शास्त्रों के प्रति अध्ययन नहीं होने के कारण उसके प्रति अति विघ्न है। जितनी भी कोरियोग्राफी और समूह नृत्य किया जा रहा है, उसमें पिण्डीबन्ध का प्रयोग सभी करते हैं, परन्तु बहुत से कलाकार शास्त्रीय शब्दों को न जानते हुए इसका प्रयोग अपने नृत्य में किए जा रहे हैं।